

समादाय लसद्भक्त्या तथानन्तमती दृढम्। पक्षमासोपवासदितपः कृत्वा सुदारुणम् ॥५४॥
 संन्यासविधिना मृत्वा स्मरन्ती जिनपङ्कजम्। सहस्रारे सुरो जातः प्रोल्लसन्मुकुटादिभिः ॥५५॥
 श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां साभवद्भक्तिभाजनम्। नाना सत्सम्पदोपेतः सुपुण्यात्किं न जायते ॥५६॥
 क्रीडामात्रगृहीतशीलममलं सम्पाल्य शर्मप्रदं नाना रत्नसुवर्णभोगनिचये निष्काङ्क्षितामाश्रिता।
 या सानन्तमती जिनेन्द्रचरणाम्भोजान्तभृङ्गीव्रतात्स्वर्गे देवमहर्द्धिकोजनि तरां दद्यात्सतां मङ्गलम् ॥५७॥

इति श्रीकथाकोशे निष्काङ्क्षिताङ्गेऽनन्तमतीकथा समाप्ता।

८. उद्वायनराज्ञः कथा

नत्वारहतं जगत्पूज्यं भारतीं गुरुपङ्कजम्। वक्ष्ये निर्विचिकित्साङ्गे कथामुद्वायनप्रभोः ॥१॥
 इहैव भरतक्षेत्रे देशे कच्छाभिधे शुभे। पुरे रौरवके नाम्ना सुधीरुद्वायनप्रभुः ॥२॥
 सद्वृष्टिर्जिनदेवानां पादपद्मार्चने रतः। दाता भोक्ता विचारज्ञः प्रजानां सुतरां हितः ॥३॥
 तस्य प्रभावती राज्ञी साध्वी पूर्णेन्दुनिर्मला। दानपूजाव्रताम्भोभिः प्रक्षालितमनोमला ॥४॥

अनन्तमती खूब दृढ़ता के साथ तप तपने लगी। महिना-महिना के उपवास करने लगी, परीषह सहने लगी। उसकी उमर और तपश्चर्या देखकर सबको दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती थी। अनन्तमती का जब तक जीवन रहा तब तक उसने बड़े साहस से अपने व्रत का निर्वहन किया। अन्त में वह संन्यास मरण कर सहस्रार स्वर्ग में जाकर देव हुई। वहाँ वह नित्य नये रत्नों के स्वर्गीय भूषण पहनती है, जिनभगवान् की भक्ति के साथ पूजा करती है, हजारों देव देवाङ्गनायें उसकी सेवा में रहती हैं। उसके ऐश्वर्य का पार नहीं और न उसके सुख ही की सीमा है। बात यह है कि पुण्य के उदय से क्या-क्या नहीं होता ? ॥४९-५६॥

अनन्तमती को उसके पिता ने केवल विनोद से शीलव्रत दे दिया था। पर उसने उसका बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया, कर्मों के पराधीन सांसारिक सुख की उसने स्वप्न में भी चाह नहीं की। उसके प्रभाव से वह स्वर्ग में जाकर देव हुई, जहाँ सुख का पार नहीं। वहाँ वह सदा जिनभगवान् के चरणों में लीन रहकर बड़ी शान्ति के साथ अपना समय बिताती है। सती-शिरोमणि अनन्तमती हमारा भी कल्याण करे ॥५७॥

८. उद्वायन राजा की कथा

संसार-श्रेष्ठ जिनभगवान्, जिनवाणी और जैन ऋषियों को नमस्कार कर उद्वायन राजा की कथा लिखता हूँ, जिन्होंने सम्यक्त्व के तीसरे निर्विचिकित्सा अंग का पालन किया है ॥१॥

उद्वायन रौरवक नामक शहर के राजा थे, जो कि कच्छदेश के अन्तर्गत था। उद्वायन सम्यग्दृष्टि थे, दानी थे, विचारशील थे, जिनभगवान् के सच्चे भक्त थे और न्यायी थे। सुतरां प्रजा का उन पर बहुत प्रेम था और वे भी प्रजा के हित में सदा उद्यत रहा करते थे ॥२-३॥

उसकी रानी का नाम प्रभावती था। वह भी सती थी, धर्मात्मा थी। उसका मन सदा पवित्र रहता था। वह अपने समय को प्रायः दान, पूजा, व्रत, उपवास, स्वाध्यायादि में बिताती थी ॥४॥

निष्कण्टकं महाराज्यं कुर्वन्सद्धर्मतत्परः । यावदास्ते सुखं राजा स पुण्येन तदा मुदा ॥५॥
 धर्मानुरागतः स्वर्गे सौधर्मेन्द्रेण धीमता । सभायां सर्वदेवानामग्रतश्चेति भाषितम् ॥६॥
 देवोर्हन्दोषनिर्मुक्तो धर्मश्चेति क्षमादिकः । गुरुर्निर्ग्रन्थतायुक्तस्तत्त्वे श्रद्धार्हते रुचिः ॥७॥
 सा रुचिस्तु जिनेन्द्राणां स्वर्गमोक्षसुखप्रदा । धर्मानुरागतस्तीर्थयात्राभिः सुमहोत्सवैः ॥८॥
 जिनेन्द्रभवनोद्धारैः प्रतिष्ठाप्रतिमादिभिः । साधर्मिकेषु वात्सल्याज्जायते भव्यदेहिनाम् ॥९॥
 शृण्वन्तु सुधियो देवाः सम्यक्त्वं जगदुत्तमम् । दुर्गत्यादिक्षयो यस्मात्सम्प्राप्तिः स्वर्गमोक्षयोः ॥१०॥
 इत्यादिसारसम्यक्त्व-स्फीतिं वर्णयता सता । चक्रे निर्विचिकित्साङ्गे तेन तद्भूपतेः स्तुतिः ॥११॥
 तच्छ्रुत्वा वासवाख्यश्च देवो मायामयं द्रुतम् । दुष्टकुष्टव्रणोपेतं धृत्वा रूपं महामुनेः ॥१२॥
 मध्याह्ने तत्परीक्षार्थं भिक्षार्थी स समागतः । तदोद्घायनभूपालस्तं विलोक्य मुनीश्वरम् ॥१३॥
 पतन्तं पीडयाक्रान्तं मक्षिकाजालवेष्टितम् । ससम्भ्रमं समुत्थाय तिष्ठ तिष्ठेति सम्बदन् ॥१४॥

उद्घायन अपने राज्य का शान्ति और सुख से पालन करते और अपनी शक्ति के अनुसार जितना बन पड़ता, उतना धार्मिक काम करते। कहने का मतलब यह कि वे सुखी थे, उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। उनका राज्य भी शत्रु रहित निष्कण्टक था ॥५॥

एक दिन सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अपनी सभा में धर्मोपदेश कर रहा था कि संसार में सच्चे देव अरहन्त भगवान् हैं, जो कि भूख, प्यास, रोग, शोक, भय, जन्म, जरा, मरण आदि दोषों से रहित और जीवों को संसार के दुःखों से छुड़ाने वाले हैं; सच्चा धर्म, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दशलक्षण रूप है; गुरु निर्ग्रन्थ हैं; जिनके पास परिग्रह का नाम निशान नहीं और जो क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि से रहित हैं और वह सच्ची श्रद्धा है, जिससे जीवाजीवादिक पदार्थों में रुचि होती है। वही रुचि स्वर्ग-मोक्ष की देने वाली है। यह रुचि अर्थात् श्रद्धा धर्म में प्रेम करने से, तीर्थयात्रा करने से, रथोत्सव कराने से, जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार कराने से, प्रतिष्ठा कराने से, प्रतिमा बनवाने से और साधर्मियों से वात्सल्य अर्थात् प्रेम करने से उत्पन्न होती है। आप लोग ध्यान रखिये कि सम्यग्दर्शन संसार में एक सर्वश्रेष्ठ वस्तु है और कोई वस्तु उसकी समानता नहीं कर सकती। यही सम्यग्दर्शन दुर्गतियों का नाश करके स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला है। इसे तुम धारण करो। इस प्रकार सम्यग्दर्शन का और उसके आठ अंगों का वर्णन करते समय इन्द्र ने निर्विचिकित्सा अंग का पालन करने वाले उद्घायन राजा की बहुत प्रशंसा की। इन्द्र के मुँह से एक मध्यलोक के मनुष्य की प्रशंसा सुनकर एक बासव नाम का देव उसी समय स्वर्ग से भारत में आया और उद्घायन राजा की परीक्षा करने के लिए एक कोढ़ी मुनि का वेश बनाकर भिक्षा के लिए दोपहर ही को उद्घायन के महल गया ॥६-१३॥

उसके शरीर से कोढ़ गल रहा था, उसकी वेदना से उसके पैर इधर-उधर पड़ रहे थे, सारे शरीर पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं और सब शरीर विकृत हो गया था। उसकी यह हालत होने पर भी जब वह राजद्वार पर पहुँचा और महाराज उद्घायन की उस पर दृष्टि पड़ी तब वे उसी समय सिंहासन से

प्रतिष्ठाप्य महाभक्त्या पादप्रक्षालनादिभिः। प्रासुकं सरसाहारं स तस्मै दत्तवान्मुदा ॥१५॥
 स भुक्त्वा विविधाहारं मायया प्रचुरं पुनः। महादुर्गन्धसंयुक्तं चकार वमनं मुनिः ॥१६॥
 तदा दुर्गन्धतो नष्टाः पार्श्वस्थाः सज्जनाः जनाः। प्रतीच्छन्वान्तिकं भूपः सस्त्रीकः संस्थितः सुधीः ॥१७॥
 तदा सोपि मुनिर्गाढं प्रभावत्यास्तथोपरि। महाकष्टेन दुर्गन्धं छर्दिकं कृतवान्पुनः ॥१८॥
 हा मया पापिना दत्तं विरुद्धं मुनयेऽशनम्। महापुण्येर्विना पात्र-दानसिद्धिर्न भूतले ॥१९॥
 यथा चिन्तामणिः कल्प-वृक्षो वा वाञ्छितप्रदः। प्राप्यते तुच्छपुण्यैर्न पात्रदानं तथा क्षितौ ॥२०॥
 इत्यादिकं स भूपालो निन्दां कुर्वन्निजात्मनः। स्वच्छतोयं समादाय क्षालनार्थं पुनर्वपुः ॥२१॥
 समुत्थितस्तदा सोपि ज्ञात्वा तद्भक्तिमद्भुताम्। देवो मायामपाकृत्य संजगाद प्रहर्षतः ॥२२॥
 अहो नरेन्द्र सददृष्टेर्महादानपतेस्तव। गुणो निर्विचिकित्साङ्गे सौधर्मेन्द्रेण वर्णितः ॥२३॥
 यादृशोत्र मयागत्य स दृष्टस्तादृशस्तराम्। अतस्त्वं श्रीजिनेन्द्रोक्त-सारधर्मस्य तत्त्ववित् ॥२४॥
 त्वां विना पाणिपद्माभ्यां मुनेर्वान्ति सुदुःसहाम्। समुद्धर्तुं क्षमः कोत्र सम्यग्दृष्टिः शिरोमणिः ॥२५॥
 इति स्तुत्वा महीनाथं देवो वासवसंज्ञकः। प्रोक्त्वा वृत्तान्तकं सर्वं तं समर्च्य दिवं गतः ॥२६॥
 अहो पुण्यस्य माहात्म्यं सतां केनात्र वर्ण्यते। यद्वर्णनं सुराधीशः करोति परमादरात् ॥२७॥

उठकर आये और बड़ी भक्ति से उन्होंने उस छली मुनि का आह्वान किया। इसके बाद नवधाभक्तिपूर्वक हर्ष के साथ राजा ने मुनि को प्रासुक आहार कराया। राजा आहार कराकर निवृत्त हुए कि इतने में उस कपटी मुनि ने अपनी माया से महा दुर्गन्धित वमन कर दिया। उसकी असह्य दुर्गन्ध के कारण जितने और लोग पास खड़े हुए थे, वे सब भाग खड़े हुए किन्तु केवल राजा और रानी मुनि की सम्हाल करने को वहीं रह गये। रानी मुनि का शरीर पोंछने को उसके पास गई। कपटी मुनि ने उस बेचारी पर भी महा दुर्गन्धित उछाट कर दी। राजा और रानी ने इसकी कुछ परवाह न कर उलटा इस बात पर बहुत पश्चाताप किया कि हमसे मुनि की प्रकृति विरुद्ध न जाने क्या आहार दे दिया गया, जिससे मुनिराज को इतना कष्ट हुआ। हम लोग बड़े पापी हैं। इसीलिए तो ऐसे उत्तम पात्र का हमारे यहाँ निरन्तराय आहार नहीं हुआ। सच है जैसे पापी लोगों को मनोवांछित देने वाला चिन्तामणि स्तन और कल्पवृक्ष प्राप्त नहीं होता, उसी तरह सुपात्र के दान का योग भी पापियों को नहीं मिलता है। इस प्रकार अपनी आत्मनिन्दा कर और अपने प्रमाद पर बहुत-बहुत खेद प्रकाश कर राजा रानी ने मुनि का सब शरीर जल से धोकर साफ किया। उनकी इस प्रकार अचलभक्ति देखकर देव अपनी माया समेटकर बड़ी प्रसन्नता के साथ बोला-राजराजेश्वर, सचमुच हो तुम सम्यग्दृष्टि हो, महादानी हो। निर्विचिकित्सा अंग के पालन करने में इन्द्र ने जैसी तुम्हारी प्रशंसा की थी, वह अक्षर-अक्षर ठीक निकली, वैसा ही मैंने तुम्हें देखा। वास्तव में तुम ही ने जैनशासन का रहस्य समझा है। यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे बिना और कौन मुनि की दुर्गन्धित उछाट अपने हाथों से उठाता? राजन्! तुम धन्य हो, शायद ही इस पृथ्वी मंडल पर इस समय तुम सरीखा सम्यग्दृष्टियों में शिरोमणि कोई होगा? इस प्रकार उद्वायन की प्रशंसा

एकदोद्वायनो राजा राज्यं कुर्वन्स्वलीलया। दानपूजाव्रताद्युक्ते जिनधर्मे सुतत्परः ॥२८॥
 कियत्यपि गते काले कारणं वीक्ष्य किंचन। त्रिधा वैराग्यसम्पन्नो दत्त्वा राज्यं सुताय च ॥२९॥
 वर्द्धमानजिनेन्द्रस्य स्वर्गमोक्षप्रदायिनः। पादपङ्कजयोर्मूले महाभक्त्या सुनिश्चलः ॥३०॥
 दीक्षामादाय जैनेन्द्रिं देवेन्द्राद्यैः समर्चिताम्। प्रतिपाल्य जगत्सारं सुधी रत्नत्रयं मुदा ॥३१॥
 ततो ध्यानाग्निना दग्ध्वा घातिकर्मचतुष्टयम्। केवलज्ञानमुत्पाद्य सुरासुरनरार्चितः ॥३२॥
 सम्बोध्य सकलान्भव्यान्स्वर्गमोक्षप्रदायकः। शेषकर्मक्षयं कृत्वा सम्प्राप्तो मोक्षमक्षयम् ॥३३॥
 प्रभावती महादेवी गृहीत्वा सुतपः सती। मुक्त्वा स्त्रीलिङ्गकं कष्टं ब्रह्मस्वर्गं सुरोऽभवत् ॥३४॥
 सकलगुणसमुद्रः केवलज्ञानचन्द्रः पदनमदमरेन्द्रः शर्मदः श्रीजिनेन्द्रः।
 स भवतु मम नित्यं सेवितो भक्तिभारैर्गुणगणमणिरुद्रो बोधसिन्धुर्यतीन्द्रः ॥३५॥
 इति कथाकोशे निर्विचिकित्साङ्गे श्रीमदुद्वायनस्य कथा समाप्ता।

कर देव अपने स्थान पर चला गया और राजा फिर अपने राज्य का सुखपूर्वक पालन करते हुए दान, पूजा, व्रत आदि में अपना समय बिताने लगे ॥१४-२८॥

इसी तरह राज्य करते-करते उद्वायन का कुछ और समय बीत गया। एक दिन वे अपने महल पर बैठे हुए प्रकृति की शोभा देख रहे थे कि इतने में एक बड़ा भारी बादल का टुकड़ा उनकी आँखों के सामने से निकला। वह थोड़ी ही दूर पहुँचा होगा कि एक प्रबल वायु के वेग ने उसे देखते-देखते नामशेष कर दिया। क्षणभर में एक विशाल मेघखण्ड की यह दशा देखकर उद्वायन की आँखें खुलीं। उन्हें सारा संसार ही अब क्षणिक जान पड़ने लगा। उन्होंने उसी समय महल से उतरकर अपने पुत्र को बुलाया और उसके मस्तक पर राजतिलक करके आप भगवान् वर्द्धमान के समवसरण में पहुँचे और भक्ति के साथ भगवान् की पूजा कर उनके चरणों के पास ही उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जिसका इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र आदि सभी आदर करते हैं ॥२९-३१॥

साधु होकर उद्वायन राजा ने खूब तपश्चर्या की, संसार का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ रत्नत्रय प्राप्त किया। इसके बाद ध्यानरूपी अग्नि से घातिया कर्मों का नाशकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। उसके द्वारा उन्होंने संसार के दुःखों से तड़फते हुए अनेक जीवों को उबार कर, अनेकों को धर्म के पथ पर लगाया और अन्त में अघातिया कर्मों का भी नाश कर अविनाशी अनन्त मोक्षपद प्राप्त किया ॥३२-३३॥

उधर उनकी रानी सती प्रभावती भी जिनदीक्षा ग्रहण कर तपश्चर्या करने लगी और अन्त में समाधि-मृत्यु प्राप्त कर ब्रह्मस्वर्ग में जाकर देव हुई ॥३४॥

वे जिन भगवान् मुझे मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करें, जो सब श्रेष्ठ गुणों के समुद्र हैं, जिनका केवलज्ञान संसार के जीवों का हृदयस्थ अज्ञानरूपी आताप नष्ट करने को चन्द्रमा समान है, जिनके चरणों को इन्द्र, नरेन्द्र आदि सभी नमस्कार करते हैं, जो ज्ञान के समुद्र और साधुओं के शिरोमणि हैं ॥३५॥

९. श्रीरेवतीराज्ञ्याः कथा

प्रणम्य परया भक्त्या जिनेन्द्रं त्रिजगद्धितम् । कथाममूढदृष्टेश्च रेवत्या रचयाम्यहम् ॥१॥
 अत्रैव विजयार्धस्थ-दक्षिणश्रेणिसंस्थिते । मेघकूटपुरे राजा नाम्ना चन्द्रप्रभः सुधीः ॥२॥
 प्राज्यं राज्यं प्रकुर्वाणश्चैकदा स खगेश्वरः । चन्द्रशेखरपुत्राय दत्त्वा राज्यं सुधार्मिकः ॥३॥
 यात्रां कुर्वज्जिनेन्द्राणां महातीर्थेषु शर्मदाम् । गत्वा दक्षिणदेशस्थ-मथुरायां स्वपुण्यतः ॥४॥
 गुप्ताचार्यमुनेः पार्श्वे श्रुत्वा धर्मकथास्ततः । प्रोक्तः परोपकारोत्र महापुण्याय भूतले ॥५॥
 इति ज्ञात्वा तथा तीर्थयात्रार्थं श्रीजिनेशिनाम् । काश्चिद्विद्या दधानोपि क्षुल्लको भक्तितोऽभवत् ॥६॥
 एकदा तीर्थयात्रार्थमुत्तरां मथुरां प्रति । गन्तुकामेन तेनोच्चैर्गुरुः पृष्ठः प्रणम्य च ॥७॥
 किं कस्य कथ्यते देव भवद्भिः करुणापरैः । स प्राह परमानन्दाद् गुप्ताचार्यो विचक्षणः ॥८॥
 सुव्रताख्यमुनेर्वाच्या नतिर्मे गुणशालिनः । धर्मवृद्धिश्च रेवत्याः सम्यक्त्वासक्तचेतसः ॥९॥
 त्रिःपृष्टेन तदेवोच्चैराचार्येण प्रजल्पितम् । ततश्चन्द्रप्रभः सोपि क्षुल्लको निजचेतसि ॥१०॥

९. रेवती रानी की कथा

संसार का हित करने वाले जिनभगवान् को परम भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अमूढदृष्टि अंग का पालन करने वाली रेवती रानी की कथा लिखता हूँ। विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नाम का एक सुन्दर शहर है। उसके राजा हैं चन्द्रप्रभ। चन्द्रप्रभ ने बहुत दिनों तक सुख के साथ अपना राज्य किया। एक दिन वे बैठे हुए थे कि एकाएक उन्हें तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई। राज्य का कारोबार अपने चन्द्रशेखर नाम के पुत्र को सौंपकर वे तीर्थयात्रा के लिए चल दिये। वे यात्रा करते हुए दक्षिण मथुरा में आये। उन्हें पुण्य से वहाँ गुप्ताचार्य के दर्शन हुए। आचार्य से चन्द्रप्रभ ने धर्मोपदेश सुना। उनके उपदेश का उन पर बहुत असर पड़ा। वे आचार्य के द्वारा—

प्रोक्तः परोपकारोऽत्र महापुण्याय भूतले । -ब्रह्म नेमिदत्त

अर्थात् परोपकार करना महान् पुण्य का कारण है, यह जानकर और तीर्थयात्रा करने के लिए एक विद्या को अपने अधिकार में रखकर क्षुल्लक बन गये ॥१-६॥

एक दिन उनकी इच्छा उत्तर मथुरा की यात्रा करने की हुई। जब वे जाने को तैयार हुए तब उन्होंने अपने गुरु महाराज से पूछा—हे दया के समुद्र! मैं यात्रा के लिए जा रहा हूँ, क्या आपको कुछ समाचार तो किसी के लिए नहीं कहना है? गुप्ताचार्य बोले—मथुरा में एक सूरत नाम के बड़े ज्ञानी और गुणी मुनिराज हैं, उन्हें मेरा नमस्कार कहना और सम्यग्दृष्टिनी धर्मात्मा रेवती के लिए मेरी धर्मवृद्धि कहना ॥७-९॥

क्षुल्लक ने और पूछा कि इसके सिवा और भी आपको कुछ कहना है क्या? आचार्य ने कहा